RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-1
Issue-10
October-2016

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com

गांधी की दृष्टि में भारतीय समाज एवं धर्म

डॉ० ऐहतशाम जहीर

पी०एच०–डी० (राजनीति विज्ञान)

आधुनिक भारत के इतिहास में गाँधी का अविर्भाव एक ऐसी युगान्तकारी परिघटना है जिसके बिना भारत के अस्तित्व की पहचान भी संभव नहीं है। आधुनिक भारत की संरचना में यदि उनकी भूमिका न होती तो भारत आज किस स्थिति में होता यह एक ऐसा प्रष्न है जिसक उत्तर कई तरह से दिया जा सकता है। ''गाँधी संभवतः एक जटिल व्यक्तित्व हैं जिन्हें समझना और विश्लेषित करना एक दुरूह कार्य है। वे एक साथ ही स्वतंत्रता सेनानी, राजनीतिज्ञ, समाजसुधारक एवं विषिष्ट गुणों से सम्पन्न संत सभी कुछ एक साथ है''।

''वसुधैव कुटुंबकम्'' के दर्षन में विष्वास रखने वाले गाँधी प्लेटों तथा अरस्तू की तरह, मानव को सामाजिक प्राणी मानते थे। लेकिन मनुष्य की सामाजिकता से गाँधी का अभिप्राय केवल यही नहीं था कि वह एक ऐसा प्राणी है जो समाज के बिना जीवित नहीं रह सकता, बल्कि यह भी कि उसमें सामाजिक बंधनों को समझने तथा उन्हें सामाजिक हित में स्वेच्छा से स्वीकार कर लेने की क्षमता भी है। इसलिए गाँधी मनुष्य से यह अपेक्षा करते थे कि वह सदा अपनी स्वार्थ पूर्ति को ही अपना लक्ष्य न बनाये बल्कि ब्रिटिष उदारवादी विचारक मिल की तरह वह मनुष्य के लिए यह भी संभव मानते थे कि वह सामाजिक हित के सामने अपने स्वार्थ को त्याग सकता है। क्योंकि जनहित में उसका अपना हित भी षामिल होता है।

जब गाँधी को अपने समय के समाज की व्यवस्थाओं से साक्षात्कार होता था तो अपने अन्य देष वासियों तथा अपने समय के अन्य विचारकों की तरह वह उनके गुण–दोषों को समझते–समझाते थे तथा सामाजिक उद्देष्यों की छानबीन भी करतें थे। इसलिए समाज के चरम उद्देष्य के रूप में सर्वोदय के सिद्धान्त को उन्होंने आवष्यक माना। ''वास्तव मे सर्वोदय संस्कृत भाषा के दो शब्दों 'सर्व तथा उदय' की संधि है। सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ है सबकी भलाई, सबका कल्याण और सबका उत्थान''[2]

गाँधी के अनसार समाज का आदर्ष होना चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के सभी क्षेत्रों में भलाई, उन्नति, विकास अथवा कल्याण। चाहे वह समाजिक हो या सांस्कृतिक, धार्मिक हो या शैक्षिक, आर्थिक हो या राजनीतिक। ''गाँधी के अनुसार समाज का सच्चा आदर्ष होना चाहिए–हर एक का जीवन के सभी क्षेत्रों में कल्याण।''[3]

गाँधी एक दार्षनिक अराजकतावादी थे, जो एक आदर्ष व्यवसथा में राज्य को किसी भी रूप में अनिवार्य नहीं मानते थे। गाँधी ने अपने आदर्ष समाज को टाल्सटाय की तरह 'रामराज्य' की संज्ञा दी थी जो एक ऐसी स्वसंचालित सुव्यवस्था होगी जिसमें किसी पर किसी तरह का भी सामाजिक, आर्थिक, नैतिक तथा राजनीतिक दबाव नहीं होगा। इस आदर्ष व्यवस्था में सभी स्त्रियों तथा पुरूषों को समान स्थान प्राप्त होगा, सभी धर्मों को आदर की दृष्टि से देखा जायेगा विविधता में एकता होगी हर व्यक्ति अपने शारीरिक श्रम से अपनी आजीविका का अर्जन करेगा और सब एक दूसरे के प्रति आपसी सहयोग से काम लेंगे। इस व्यवस्था में अमीर–गरीब, ऊँच–नीच, धनी–निर्धन का भेद–भाव नहीं होगा। इसमें इन सभी विकारों के स्थान पर एक ऐसी व्यवस्था होगी जिसमें बलवान कमजोर की, धनी, निर्धन की तथा षिक्षित अषिक्षित की सेवा करेगा। इसमें सब व्यक्ति सादा, लेकिन उच्च स्तरीय जीवन व्यतित करने का प्रयास करेंगे तथा इस समाज में हिंसा, पुलिस, सेना, अदालत, वकील, अस्पताल, डॉक्टर कम से कम होंगे व कम से कम होते जायेंगे। गाँधी के विचार में ऐसे स्वचालित व सुव्यवस्थित समाज की प्राप्ति संभव है और मनुष्य इसे जितना अधिक से अधिक प्राप्त करना चाहे प्राप्त कर सकता है। लेकिन वह यह भी मानते थे कि सम्पूर्ण शासन मुक्त समाज के स्वर्ण युग को संपूर्ण रूप में प्राप्त कर पाना लगभग असंभव ही होगा, शायद इसलिए कि मनुष्य, जिसके द्वारा ऐसे समाज की स्थापना संभव हो सकती है, वह स्वयं ''सर्वगुण सम्पन्न'' नहीं है। गाँधी यह भी मानते थे कि ''वर्तमान परिस्थिति में मनुष्य का जीवन इतना पूर्ण नहीं है कि वह पूरी तरह स्वयं संचालित हो सके'' इसके अलावा कुछ ऐसे कार्य भी हैं, जो सत्ता के अभाव में संभव ही नहीं है। लेकिन इस दिशा में वे चाहते थे कि सत्ता का अधिकतम विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय। दूसरी ओर, शासन के प्रत्येक स्तर पर सत्ता का कम से कम प्रयोग हो और लोगों के स्वषासन के रास्ते में जो उन्हें दूर किया जाय। स्वाषासन सत्ता के मार्ग में बाधक नहीं होना चाहिए।

मतदान के अधिकार से संबंधित विचार भी गाँधी के कम क्रांतिकारी नहीं थे मूलतः यह प्राचीन भारत की आश्रम व्यवस्था पर आधारित है। इस व्यवस्था में मनुष्य के जीवन को पच्चीस–पच्चीस वर्षों के चार भागों में बांटा गया है और जिसमें 25–50 वर्ष वाले गृहस्थ आश्रम को मानव जीवन का सर्वाधिक सक्रिय आश्रम माना गया है। गाँधी चाहते थे कि समाज पर शासन के लिए सत्ता का प्रयोग वे लोग करें जो जीवन के इस द्वितीय आश्रम में हों जिससे शासन को गतिषीलता मिल सके। उनकी मान्यता थी कि बूढ़े लोगों के द्वारा चालाई जाने वाली सरकार भी योग्यता नहीं रह जाती है। इतना ही नहीं, उनकी यह भी मान्यता थी कि ''जनतांत्रिक समाज के शासन व्यवस्था में प्रत्येक विभाग योग्य तथा अनुभवी लोगों के हांथों में हो, जिससे शासन सुचारू रूप से चल सके।''5 मतदान का अधिकार सिर्फ उन्हें मिले जो साक्षर हों, अपने मूलभूत अधिकार को जो समझ सके, आर्थिक रूप से निर्भर हों और आजीविका श्रम का धर्म निभाने वाले हों, जिससे कि वे अपने मताधिकार का प्रयोग सुपात्र को चुनने के लिए करे या अपने वोट को अपनी शारीरिक आवष्यकताओं की क्षणिक पूर्ति के लिए बेंचे नहीं।

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

गाँधी न केवल नागरिकों से समाज के प्रति ऐसे सभी दायित्व निभाने के लिए कहते थे, बल्कि उनसे एक दूसरे के प्रति अनेक सामाजिक दायित्व निभाने के लिए भी कहते थे। ''नागरिकों को साम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद तथा अलगाववाद जैसी सामाजिक बुराईयों से दूर रहना चाहिए तथा सामान्य हित के पक्ष में जनमत जागृत करना चाहिए साथ ही समाचार पत्रों तथा विचार पत्रों की निगरानी भी करनी चाहिए जिससे कि वे जनता को घृणा वैमनस्य अथवा हिंसा के लिए न उकसा सके।''[6]

गाँधी जी का करिश्मा तथा इनके विषिष्ट स्वरूप को समझने के लिए गाँधी के जीवन दर्षन का सम्यक अवबोध आवष्यक है। उनके विविध कार्यों की विषिष्टता उनके जीवन दर्षन से ही उद्भूत होती है। टॉयनबी ने उन्हें ''एक हिन्दू राजनीतिा संत''[7] कहा है। गाँधी जी जन्मतः हिन्दू थे और हिन्दू होने में वे गर्व का अनुभव करते थे किन्तु उनका यह भी दृढ़ विष्वास था कि हिन्दू धर्म किसी संकुचित पंथ अथवा आस्था का नाम नहीं है, अपितु यह सम्पूर्ण व्यक्तित्व को दिव्य बनाता है ईष्वर और सत्य पर्यायवाची शब्द हैं। उनके अनुसार सत्य और अहिंसा आदिकाल से प्रतिस्थापित मूल्य हैं और कोई भी व्यक्ति जो इनके अनुरूप अपने जीवन को ढाल कर चलता है उसे सच्चा हिन्दू कहा जा सकता है। इस प्रकार, 'हिन्दू' धर्म की गाँधी जी की अवधारणा धर्म के आभ्यंतरिक पक्ष से सम्बद्ध थी तथा उन लोगों से भिन्न थी जो धर्म की बाइबल मानते थे। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि जो भी ईष्वर को जिस रूप में भजता है उसकी आस्था ईष्वर के उसी रूप में विषेष में प्रबल होती है। गीता में यह भी कहा गया है कि भक्ति भावना के साथ जिस मार्ग का भी अनुसरण करते हुए मनुष्य ईष्वर को पूजता है वे सभी मार्ग ईष्वर तक पहुंचते हैं''[8] अतः एक सच्चे हिन्दू के लिए ईष्वर को अन्य रूपों और नामों से पूजने वाले लोगों के साथ द्वेष अथवा झगड़े का कोई कारण हो ही नहीं सकता।

इनके अनुसार ईष्वरपरायणता कष्ट में पड़े मानव की सेवा का ही दूसरा नाम है। अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने एक नास्तिक से कहा, ''वह मैत्री भाव जिसके कारण तुम अपने भाई के कष्ट से दुःखी होते हो ईष्वरपरायणता है। तुम अपने को नास्तिक कह सकते हो किन्तु जबतक तुममे अन्य मनुष्यों के साथ एकात्मकता का भाव विद्यमान है तुम व्यवहार में ईष्वर को स्वीकार करते हो।'[9] गाँधी जी का धर्म कभी भी उनके तर्क बुद्धिपरक चिन्तन में रूकावट नहीं बना और न ही उन्हें इसके कारण भारतीय स्त्रोतों से विचारों को ग्रहण करने में कोई संकोच होता था। वे तर्कबुद्धिपरकता को महत्व देते थे। तर्क बुद्धि की कसौटी पर खरा न उतरने पर शास्त्रों की उक्तियों को भी अमान्य करने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं थी। पूजा की अपनी अवधारणा को व्याख्यायित करते हुए गाँधी जी ने इस बात पर बल दिया कि यदि पूजा कर्म में प्रतिफलित नहीं होती है तो उसका कोई अर्थ नहीं है। ''गीता की पूजा इसे तोते की तरह रटने से नहीं हो जाती, अपितु इसमें निहित षिक्षाओं के अनुपालन से होती है।

गाँधी की परमात्मा संबंधी अवधारणा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने परमात्मा का वह रूप देखा, जो सर्वगुण सम्पन्न है, एक ऐसी चनरम वास्तविकता जो सबको जन्म देती है। सबका संचालन करती है और ऐसा सब करने के बावजूद वह निराकार है। इसलिए परमात्मा, सर्वशक्तिमान तथा सर्वत्र विराजमान होने के बावजूद एक ऐसी शक्ति है, जो न दिखाई देती है, न सुनाई देती है और न महसूस होती है लेकिन फिर भी जो अजर तथा अमर है। परमात्मा रूपी शक्ति का अंष हमारी आत्मिक शक्ति के रूप में हमारे जीवन का संचालन करती है। ''वास्तव में गाँधी ने परमात्मा के साकार रूप को स्वीकार न कर उसे निराकार ही माना। परमात्मा निराकार है इसलिए आत्मा भी निराकार है। उन्होंने परमात्मका को एक ऐसी वाह्य शक्ति के रूप में देखा, जो सारे ब्रह्मण्ड का संचालन करती है और आत्मा को एक ऐसी आंतरिक शक्ति के रूप में, जो हमारे निजी जीवन का संचालन करती है।''

गाँधी धर्म को मानव और परमात्मा के बीच की एक कड़ी मानते थे। आत्मा का परमात्मा से एक ऐसा सीधा संबंध है, जिसमें किसी बिचौलिये की आवश्यकता नहीं होती। धर्म हर व्यक्ति का निजी मामला है। राज्य को धर्म में मामले में दखल नहीं देना चाहिए। उसे तो सब धर्मों को समान समझना चाहिए। क्योंकि सभी धर्मों का आधार नैतिकता है। इसलिए सब धर्म और सब धर्मों के अनुयायी समान हैं। जब ऐसा है तो राज्य उनके बीच भेद–भाव क्यों करे, क्यों किसी धर्म विषेष को राज्य–धर्म का स्थान दे और क्यों बाकी सब धर्मों को द्वितीय स्थान पर रखे, ऐसा करने से अनुचित भेद–भाव होगा, इसलिए गाँधी धर्म प्रधान राज्य के पक्षधर नहीं थे। गांधी एक ऐसे धर्म निरपेक्ष राज्य की कल्पना करते थे, जिसमें राज्य का व्यवहार सर्वधर्मसमभाव का होगा, जिसमें सभी धर्मों और उसके अनुयायियों का बिना किसी भेद–भाव के समान दर्जा होगा। साथ ही हर व्यक्ति को आत्मा की अभिव्यक्ति का तथा किसी भी धर्म को मानने या न मानने का अधिकार होगा और राज्य धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

इस प्रकार हर नागरिक को चाहिए कि वह अपनी आत्मा का अनुसरण करें, असत्य और अन्याय का प्रतिकार करके सत्य और न्याय के रास्ते पर चले। अहिंसा और शान्ति का रास्ता अपनाये तथा हिंसा से जितना परे रह सके, ब्रह्मचर्य का पालन करे, ईष्वर के अलावा किसी और से न डरे। अपनी संस्कृति, सभ्यता, नैतिक मूल्यों तथा सभी सामाजिक संसथाओं तथा व्यवस्थाओं को स्वीकार करे जो उसे प्रासंगिक लगती हो। अपने देष में बनी वस्तुओं से प्रेम करे और उन्हें सादर स्वीकार करे। अपने धर्म का पालन करे तथा अन्य सभी धर्मों और उसके अनुयायियों के प्रति समान रूप से आदर भाव रखे। गाँधी के अनुसार ''गाँधीवाद'' नाम की कोई वस्तु है ही नहीं या और न मैं अपने पीछे कोई धर्म या सम्प्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैने किसी नये सिद्धांत या शिक्षा का आविष्कार किया है मैनें तो जो शाष्वत सत्य है उनको अपने नित्य के जीवन पर और प्रतिदिन के प्रष्नों पर अपने ढंग से सिर्फ घटाने का प्रयास किया है। हमारे शास्त्रों में यह कहा गया है कि न हिसत्यात्परों धर्म। सत्य से परे कोई धर्म नहीं। किन्तु उनका कहना यह भी है कि ''अहिसा परमों धर्मः'' गाँधी जी की राय में 'धर्म' शब्द के ऊपर का इन दो सूत्रों में भिन्न अर्थ है।

आज हम जिस दौर से गुजर रहें है, वह बहुत ही विचित्र दौर है। इस दौर में हम पाते हैं कि प्रायः अच्छे विचारों की उपेक्षा की जाती है, भुजा दिया जाता है और हम ठीक उल्टे रास्ते पर चलने लगते हैं तब फिर उन विचारों या व्यक्तियों से जुड़ा कोई पर्व, तिथि या दिवस आता है तो हम

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

उसको बड़े ही उत्साह के साथ मान लेते हैं। और प्रायः ऐसे ही अवसरों पर हम उनकी प्रासंगिकता की बात करते है। इस दौर में मूल विस्तृत कर दिया जाता है और प्रासंगिकता की याद की जाती है। यह भी एक बड़ी चिंता का कारण है। दहेज से सती जैसे प्रसंगों तक अयोध्या के राम मंदिर से बाबरी मस्जिद तक, समाज की घुटन, जाति व्यवस्था के कारण फैले वैमनस्य एवं परिवार के दरकते रिष्ते जैसे समस्या का निराकरण नहीं हो पा रहा है ऐसे विविध संकट से गुजर रहे समाज में गाँधी की प्रासंगिकता की बात 'दुःख में सुमिरण सब करें, सुख में करे न कोय' जेसी लगती है। देष पर आये ऐसे संकट में गांधी की प्रासंगिकता खोजनी हो तो सबसे पहले यही लगता है कि गांधी आज होते तो कया करते, के बदले में यही सोंचना चाहिए कि आज हम इन परिस्थितियों में क्या कर सकते हैं? यह हमारा सौभाग्य है कि उन्होंने हमें सीधा–साधा एवं साफ–सुथरा रास्ता दिखाया है, हर संकट से निपटने का एक दृढ़ लेकिन विनम्र धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में रास्ता दिखाया है। अगर हम वर्तमान संकट के इस दौर में अपनी प्रासंगिकता भुल गये तो गांधी की प्रासंगिकता भुल गये तो गांधी की प्रासंगिकता भी किसी को याद नहीं रहेगी और यदि याद आयेगी भी तो समारोहों, पर्वों और दिवसों पर जिनकी अपने आप में कोई सार्थक प्रासंगिकता नहीं है।

गांधी जीवन भर सत्य की साधना और 'पीड–पराई' के निदान के सतत् कोषिष में लगे रहे। उस जुस्तजू में उन्हें अपनों की बेरूखी भी सहनी पड़ी तथा सुकरात, गैलेलियों ओर ईसामसीह की परम्परा में शहादत ही उनके हिस्से भी आई। गांधी ने एक बार कहा था कि ''मुझे श्हीद बनने की तमन्ना नहीं है। लेकिन अगर अपने धर्म की रक्षा का उच्चतम कर्तव्य पालन करते हुए मुझे शहादत मिल जाय, तो मैं उसका पात्र माना जाऊँगा।''12 समाज के परिप्रेक्ष्य में गांधी ने इंसान की जिंदगी को टुकड़ों में बांट कर नहीं देखा।

अपनी अच्छाइयों और बुराईयों के साथ व्यक्ति उनकी कल्पना के केन्द्र में थे। व्यक्ति अपने पुरूषार्थ के बल पर ओसियानिक सर्किल में फैलता हुआ एक समाज बनता है। इसी क्रम में व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर निर्भर इकाइयां बनती है। अतः मूल्यों पर आधारित समग्रता की अवधारणा कभी भी उनके सपनों के ब्लूप्रिंट से ओझल नहीं हुई। धर्म के परिपेक्ष में उनकी अवधारणा इस उकित से परिलक्षित होता है कि ''मेरा हमेषा यह ख्याल रहा है कि मैं मुसलमानों को ज्यादा अच्छा मुसलमान, हिन्दुओं को ज्यादा अच्छा हिन्दू, ईसाइयों को ज्यादा अच्छा ईयाइ और पारसियों को ज्यादा अच्छा पारसी बनाऊ।'' शायद यही कारण है कि सहज भावनाओं, इतिहास, परम्परा और तमाम दार्षनिक व्याख्याओं से बहुत आगे के एक अधनंगे फकीर गांधी ने अपने जिस हथियार, अहिंसा और सत्याग्रह से ब्रिटिष साम्राजय की चूलें हिला दीं, आज फिर पूरी दुनिया के लिए प्रासंगिक हो गया है। गांधी ने कहा था ''अगर मैं लम्बी बीमारी से– नहीं, एक छोटे से फोड़े या फुंसी से भी मरूँ तो लोगों की नाराजगी मोल लेकर भी दुनिया के सामने यह जाहिर करना तुम्हारा फर्ज होगा कि मैं सच्चा महात्मा नहीं था, जिसका मैं दावा करता था। अगर तुम ऐसा करोगे तो मेरी आत्मा को शांति मिलेगी, फिर वह कहीं भी रहे। यह भी याद रखना कि अगर कोई गोली से मुझे मारना चाहे–जैसी कि पिछले हफ्ते बम फोड़ कर किसी ने कोषिष की थी और मै उफ किये बिना उसकी गोली को खुली छाती पर झेल लूँ तथा ईष्वर का नाम रटते हुए देह छोडूं तभी यह कहा जायेगा कि मैने अपना दावा सच्चा कर दिखाया।''13

संयुक्त राष्ट्रसंघ की आम सभा में गत 16 जून को गांधी के जन्म दिवस 2 अक्टूबर को विष्व अहिंसा दिवस के रूप में मनाये जाने का फैसला लिया गया है। वैष्विक समुदाय द्वारा भारत के राष्ट्रपिता को दयिा गया यह एक सामूहिक सम्मान है इस संदर्भ में लुई फिषर की एक टिप्पणी बहुत उपयुक्त है– अगर मानवता को जिन्दा रहना है, अगर सभ्यता को फलना–फूलना है, सत्य और अच्छाइयों को बरकरार रहना है तो इक्कीसवीं सदी के बचे वर्ष और उनके बाद के दिन न लेनिन या ट्राटस्की के हों न माओं या होची के बल्कि महात्मा गांधी को समर्पित हों .....

संदर्भ सूची :–

1. द्र० एन० सुब्रमनियम ''गांधी : ऐन इन्टलेक्चुअल असेसमेन्ट''– क्वेस्ट नवम्बर–दिसम्बर, 1975पृ० 47।
2. शारदा शोभिका, पूर्वोक्त सं० 5, 267–268।
3. वी०पी० वर्मा, दि पोलिटिकल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधे ऐंड सर्वोदय, आगरा : लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 1972, 88।
4. बी० एल० फाड़िया, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, आगराः साहित्य भवन, 1898, 328।
5. यंग इंडिया (अहमदाबाद), 26–12–1924, 423।
6. रामरतन, पूर्वोक्त संख्या 4, 80–81।
7. टॉयनबी, पूर्व, पृष्ठ 251।
8. डी०एस० शर्मा द्वारा एसेन्स ऑफ हिदुइज्म, पृ० 61 पर उद्घृत।
9. गोरा, एन अथेइस्ट विद गांधी, पृ० 29।
10. हरिजन, दिनांक 03.03.1946।
11. रामरतन पूर्वोक्त सं० 33, 5–6।
12. दि माइन्ड ऑफ महात्मा गांधी पृ० 9 आर०के० प्रभु और यू०आर० राव, 1945, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।
13. महात्मा गांधी, दि लास्ट फेज, खण्ड–2, पृ० 766, प्यारे लाल, प्रकाषक : नवजीवन प्रकाषन मंदिर, अहमदाबाद–14 (ये उद्गार 29 जनवरी 1948 के दिन–गोली लगने के बीस ही घंटे पहले प्रकट किये गये थे।)

© RRIJM 2015, All Rights Reserved